राजस्थान उच्च न्यायालय , जोधपुर

एस.बी. विविध आवेदन संख्या 82/2016

आशा राम

----याचिकाकर्ता

बनाम

पुष्करणा ब्राह्मण भीमजी का मोहल्ला व अन्य। ----प्रतिवादी

याचिकाकर्ता(ओं) के लिए: श्री मुक्तेश माहेश्वरी
श्री ऐदन चौधरी

प्रतिवादी(ओं) के लिए: डॉ. आरएसडी राजपुरोहित
श्री एन.आर. चौधरी
श्री के.एन. व्यास

माननीय सुश्री जस्टिस रेखा बोराना

आदेश

रिपोर्ट योग्य

11/03/2024

1. वर्तमान आवेदन एस.बी. सिविल निष्पादन द्वितीय अपील संख्या 27/1994 में पारित दिनांक 01.12.2015 के निर्णय को वापस लेने के लिए दायर किया गया है।

2. संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं:

(i) वर्ष 1974 में, प्रतिवादी संख्या 1-पुष्करणा ब्राह्मण भीमजी का मोहल्ला विकास समिति (जिसे आगे समिति कहा जाएगा) द्वारा दामोदर दास और उदय किशन जो पिता और पुत्र हैं, के खिलाफ बेदखली का मुकदमा दायर किया गया था। उक्त मुकदमे में, दामोदर दास के अन्य पुत्रों आशा राम और मूल राज की ओर से सिविल प्रक्रिया संहिता (सीपीसी) के आदेश I नियम 10 के तहत अभियोग चलाने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसमें कहा गया था कि वास्तव में दामोदर दास और उदय किशन संपत्ति के कब्जे में नहीं हैं, बल्कि यह वे यानी आशा राम और मूल राज हैं जो संपत्ति के कब्जे में हैं। यह दलील दी गई कि वर्ष 1975 में मूल राज के विवाह के बाद, कुछ पारिवारिक विवादों के कारण, दामोदर दास और उदय किशन परिवार से अलग हो गए और अलग-अलग रहने लगे। इसलिए, वादी ने दामोदर दास और उदय किशन के साथ मिलीभगत करके उन्हें पक्षकार बनाए बिना दुर्भावनापूर्ण तरीके से वर्तमान वाद दायर किया है। उक्त आवेदन में, आवेदकों द्वारा प्रतिकूल कब्जे की दलील भी उठाई गई थी।

(ii) आवेदकों द्वारा प्रस्तुत आवेदन को दिनांक 17.07.1976 के आदेश के तहत इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया था कि आवेदकों द्वारा संपत्ति पर कब्जे का कोई सबूत रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया था और आगे यह भी कि यदि वर्तमान वाद में बेदखली का आदेश पारित भी किया जाता है, तो भी यह उन आवेदकों को प्रभावित नहीं करेगा जो खुद को स्वतंत्र कब्जे में होने का दावा करते हैं।

(iii) उक्त आदेश के खिलाफ आवेदकों द्वारा एस.बी. सिविल रिवीजन संख्या 393/1976 के रूप में एक पुनरीक्षण याचिका पेश की गई थी, जिसका दिनांक 26.10.1976 के आदेश के तहत निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ निपटारा किया गया था:

> “विद्वान वकील की बात सुनी गई।
>
> विद्वान वकील की शिकायत यह है कि मुकदमे में पक्षकार प्रतिवादी के रूप में शामिल किए जाने के लिए आवेदक के आवेदन को खारिज करते हुए, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने कुछ टिप्पणियां की हैं जो किसी भी बाद की कार्यवाही में आवेदक के अधिकारों को प्रभावित कर सकती हैं। जहां तक ट्रायल कोर्ट के फैसले का सवाल है, कि वर्तमान मुकदमे में जो भी डिक्री पारित की जाएगी, उससे आवेदक के अधिकार प्रभावित नहीं होंगे, शायद ही कोई विवाद हो। हालांकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि विवादित संपत्ति से संबंधित आवेदक के अधिकारों के संबंध में ट्रायल कोर्ट द्वारा की

गई टिप्पणियां किसी भी तरह से किसी भी बाद की कार्यवाही में आवेदक के अधिकारों को प्रभावित नहीं करेंगी।

इन टिप्पणियों के साथ, पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है।"

(iv) इस बीच, समिति द्वारा प्रस्तुत वाद को दिनांक 29.07.1976 के निर्णय और डिक्री द्वारा एकपक्षीय रूप से डिक्री किया गया।

(v) तब प्रतिवादी दामोदर दास द्वारा आदेश IX नियम 13, सीपीसी के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसमें दिनांक 29.07.1976 के एकपक्षीय डिक्री को वापस लेने के लिए कहा गया था, इस आधार पर कि वाद में सम्मन कभी भी उन पर तामील नहीं किए गए थे। दामोदर दास द्वारा प्रस्तुत आदेश 9 नियम 13, सीपीसी के तहत आवेदन को स्वीकार कर लिया गया था और दिनांक 29.07.1976 के एकपक्षीय डिक्री को दिनांक 29.08.1981 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था। परिणामस्वरूप, बेदखली के लिए वाद को बहाल कर दिया गया और उसी का परीक्षण फिर से शुरू हुआ।

(vi) हालांकि, 29.07.1976 की एकपक्षीय डिक्री को रद्द किए जाने से पहले, डिक्री धारक द्वारा 29.07.1976 की डिक्री के अनुसरण में निष्पादन कार्यवाही पहले ही शुरू कर दी गई थी (निष्पादन मामला संख्या 62/1977)। उक्त निष्पादन कार्यवाही में, जब आशा राम और मूल राज द्वारा प्रतिरोध किया गया और डिक्री धारक-समिति द्वारा कब्जा प्राप्त करने में उनके द्वारा बाधाएं उत्पन्न की गईं, तो डिक्री धारक द्वारा आदेश XXI नियम 97, सीपीसी के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया। संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने में पुलिस सहायता प्रदान करने के लिए 11.10.1977 और 14.10.1977 की तिथियों के आवेदन भी प्रस्तुत किए गए। (vii) डिक्री धारक द्वारा प्रस्तुत आदेश XXI नियम 97, सी.पी.सी. के तहत आवेदन को निष्पादन न्यायालय द्वारा दिनांक 09.12.1978 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था, जिसमें पुनरीक्षण याचिका में पारित आदेश को ध्यान में रखा गया था जिसमें यह देखा गया था कि बेदखली का आदेश, यदि कोई हो, आवेदकों यानी आशा राम और मूल राज के अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा।

(viii) डिक्री धारक द्वारा दिनांक 09.12.1978 के आदेश के खिलाफ निष्पादन प्रथम अपील संख्या 46/1993 (07/1979) पेश की गई थी और यह वर्ष 1993 तक लंबित रही।

(ix) इस बीच जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दिनांक 29.07.1976 के आदेश को दिनांक 29.08.1981 के आदेश के तहत रद्द कर दिया गया था। लेकिन उक्त डिक्री को रद्द

कर दिए जाने के बावजूद, डिक्री धारक ने निष्पादन प्रथम अपील को आगे बढ़ाया जो 28.08.1993 को खारिज कर दी गई थी।

(x) दिनांक 28.08.1993 के आदेश से व्यथित होकर, डिक्री धारक द्वारा निष्पादन द्वितीय अपील संख्या 27/1994 प्रस्तुत की गई, जिसे अंततः दिनांक 01.12.2015 के निर्णय द्वारा स्वीकार कर लिया गया। उक्त निर्णय द्वारा, यह माना गया कि दिनांक 29.07.1976 का बेदखली का आदेश सभी प्रतिवादियों/आपत्तिकर्ताओं के विरुद्ध निष्पादित किए जाने योग्य है। प्रतिवादियों/किराएदारों को निर्देश दिया गया कि वे छह महीने की अवधि के भीतर अर्थात् 30.06.2016 को या उससे पहले अपीलकर्ता-वादी समिति को संबंधित संपत्ति का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा सौंप दें और साथ ही निर्देशानुसार दर पर मध्यावधि लाभ का भुगतान करें।

(xi) दिनांक 01.12.2015 के निर्णय के विरुद्ध आपत्तिकर्ता आशा राम द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की विशेष अनुमति दायर की गई, जिसे दिनांक 13.05.2016 को समयबद्ध तरीके से खारिज कर दिया गया। (xii) जैसा कि अभिलेख में प्रस्तुत किया गया है, किराए के परिसर के हिस्से का कब्जा मकान मालिक द्वारा ले लिया गया था।

(xiii) इस बीच, मुकदमे की कार्यवाही पुनः शुरू होने के बाद, प्रतिवादियों के खिलाफ एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ी और मुकदमे को अंततः 30.09.1982 के निर्णय और डिक्री द्वारा एकपक्षीय रूप से निपटाया गया।

3. वर्तमान आवेदन आपत्तिकर्ता आशा राम की ओर से द्वितीय अपील के निष्पादन में पारित दिनांक 01.12.2015 के निर्णय को वापस लेने के लिए इस एकमात्र आधार पर प्रस्तुत किया गया है कि उक्त आदेश न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करके प्राप्त किया गया था क्योंकि दिनांक 29.07.1976 की डिक्री पहले ही अपास्त की जा चुकी थी और दिनांक 01.12.2015 तक कोई डिक्री अस्तित्व में नहीं थी जिसके निष्पादन के लिए प्रार्थना की गई थी।

4. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री मुक्तेश माहेश्वरी ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामला न्यायालय के साथ धोखाधड़ी का स्पष्ट मामला है जहां डिक्री धारक को दिनांक 29.07.1976 की डिक्री के अपास्त होने की अच्छी तरह जानकारी थी और इसके बावजूद, उक्त तथ्य को छिपाते हुए, उक्त डिक्री के निष्पादन के लिए कार्यवाही जारी रखी और यहां तक कि अपने पक्ष में निर्णय प्राप्त करने में सफल भी हुआ। विद्वान वकील ने

प्रस्तुत किया कि जब रिकॉर्ड में यह स्पष्ट है कि 01.12.2015 का फैसला धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था, तो इसे इस न्यायालय द्वारा धारा 151, सीपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए स्वत: संज्ञान से रद्द किया जा सकता है। विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एसएलपी को खारिज करने का आदेश भी आड़े नहीं आएगा क्योंकि सबसे पहले, एसएलपी को समय रहते खारिज कर दिया गया था, जिसका अर्थ है कि कोई छुट्टी नहीं दी गई थी और गुण-दोष के आधार पर कोई न्यायनिर्णयन नहीं हुआ था और दूसरी बात, उक्त आदेश माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस तथ्य की अज्ञानता में पारित किया गया था कि 29.07.1976 का फैसला पहले ही रद्द किया जा चुका है। विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि विलय का सिद्धांत निश्चित रूप से वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि आदेश, यदि धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया हो विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि डिक्री धारक की छिपाव और दुर्भावना इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि 29.07.1976 की डिक्री को रद्द किए जाने के बाद, मुकदमे की कार्यवाही फिर से शुरू हुई और वादी यानी डिक्री धारक ने उसमें भाग लिया और वादी के साक्ष्य भी दर्ज करवाए। उक्त मुकदमे को 30.09.1982 को फिर से डिक्री किया गया और उक्त दूसरी डिक्री के तथ्य को डिक्री धारक ने इस न्यायालय के समक्ष निष्पादन द्वितीय अपील में भी कभी प्रकट नहीं किया। इसलिए, पहली डिक्री के निष्पादन को आगे बढ़ाना, जिसे वास्तव में रद्द कर दिया गया था, जबकि दूसरी डिक्री के पारित होने का खुलासा नहीं करना स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण, जानबूझकर और धोखाधड़ी है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि वर्तमान आवेदक को 29.07.1976 की डिक्री के रद्द किए जाने के बारे में पता नहीं था और अगस्त 2016 में ही, जब उसने प्रमाणित प्रतियों के लिए आवेदन किया, तब उसे उक्त तथ्य का पता चला। उसके तुरंत बाद वर्तमान आवेदन पेश किया गया है।

5. प्रतिवादी मूल राज की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री के.एन. व्यास ने आवेदक आशा राम की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री मुक्तेश माहेश्वरी की दलीलों को भी अपनाया।

6. उदय किशन के कानूनी प्रतिनिधियों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री एन.आर. चौधरी ने आवेदक का समर्थन करते हुए कहा कि दिनांक 01.12.2015 के निर्णय को वापस लिया जाना चाहिए, क्योंकि दिनांक 29.07.1976 की डिक्री, जिसके तहत निष्पादन की कार्यवाही की गई थी, उस तिथि को अस्तित्व में ही नहीं थी और जहां तक दिनांक 30.09.1982 की दूसरी डिक्री का संबंध है, उसके निष्पादन की कभी मांग/प्रार्थना नहीं की गई।

7. प्रतिवादी संख्या 1 समिति के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए आधारों का उल्लेख करने से पहले, यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि आवेदक द्वारा दिनांक 01.12.2015 के निर्णय को वापस लेने के लिए आवेदन के उत्तर में, प्रतिवादी डिक्री धारक द्वारा उठाया गया एकमात्र आधार यह है कि धारा 151, सीपीसी के तहत निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश को वापस नहीं लिया जा सकता है। जब कानून किसी आदेश की समीक्षा के लिए एक विशिष्ट उपाय प्रदान करता है, तो आवेदक द्वारा इसका लाभ नहीं उठाया जाता है, धारा 151, सीपीसी के तहत निहित शक्ति की आड़ में उक्त राहत प्रदान नहीं की जा सकती है। इसके अलावा, एक बार जब दिनांक 01.12.2015 के निर्णय को वापस लेने की प्रार्थना की गई है, तो उसे पहले ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा चुकी है और उक्त एसएलपी को पहले ही खारिज कर दिया गया है, वापस लेने के लिए वर्तमान आवेदन को भी बनाए रखने योग्य नहीं माना जा सकता है क्योंकि उक्त आदेश पहले ही अंतिम रूप प्राप्त कर चुका है। उत्तर में, उदय किशन के कानूनी प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने के बारे में आगे की आपत्ति उठाई गई है। इसका अर्थ यह है कि 29.07.1976 की डिक्री को रद्द करने के तथ्य को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए एक भी कथन नहीं किया गया है।

8. यद्यपि उत्तर में, केवल दो उपर्युक्त आधारों का ही तर्क/प्रत्याख्यान किया गया है, लेकिन बहस के दौरान, प्रतिवादी संख्या 1 डिक्री धारक समिति की ओर से उपस्थित विद्वान वकील डॉ. आरएसडी राजपुरोहित ने निम्नांकित प्रस्तुत किया:

(i) यदि कानून किसी आदेश की समीक्षा के लिए विशिष्ट प्रावधान प्रदान करता है, तो धारा 151, सीपीसी के तहत वापस बुलाने के लिए आवेदन पर न तो विचार किया जा सकता है और न ही इसे बनाए रखने योग्य कहा जा सकता है।

(ii) वापस बुलाने के लिए आवेदन, भले ही बनाए रखा जाना हो, केवल उन मामलों में ही विचार किया जा सकता है जहां इस तरह की वापसी के लिए प्रार्थना करने वाले पक्ष को अनसुना कर दिया गया था या उसे सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था।

(iii) भले ही वर्तमान आवेदन को समीक्षा आवेदन कहा जाता है, यह भी बनाए रखने योग्य नहीं है क्योंकि रिकॉर्ड के सामने कोई कानूनी त्रुटि स्पष्ट नहीं है जो हस्तक्षेप के योग्य हो।

(iv) यदि 29.08.1981 के आदेश को भी ध्यान में रखा जाए, जिसके तहत 29.07.1976 के आदेश को रद्द कर दिया गया था, तो भी यह स्वतः ही अमान्य है और इसलिए इसका कोई महत्व नहीं हो सकता। रिकॉर्ड पर यह निर्विवाद है कि 29.07.1976 के निर्णय और आदेश के खिलाफ़ एक नियमित प्रथम अपील भी प्रतिवादी दामोदर दास द्वारा पेश की गई थी और उसे वापस लिए जाने के रूप में खारिज कर दिया गया था। एक बार निर्णय और आदेश के खिलाफ़ एक नियमित अपील खारिज हो जाने के बाद, आदेश ने अंतिम रूप प्राप्त कर लिया और इसलिए, 29.08.1981 के आदेश/निर्णय को उस तारीख को चुनौती भी नहीं दी जा सकती थी, क्योंकि उस तारीख तक, आदेश पहले ही अंतिम रूप प्राप्त कर चुका था।

(v) चूंकि 29.07.1976 की डिक्री के खिलाफ नियमित प्रथम अपील खारिज कर दी गई थी, इसलिए उक्त निर्णय और 29.07.1976 की डिक्री उक्त आदेश में विलीन हो गई और इसलिए, इसे 29.08.1981 के आदेश के माध्यम से रद्द नहीं किया जा सकता था। इसलिए, जब 29.08.1981 का आदेश स्वयं ही निरर्थक था, तो पुनः आरंभ के बाद मुकदमे की कार्यवाही में वादी समिति की भागीदारी से कोई फर्क नहीं पड़ेगा और इसका कोई कानूनी परिणाम नहीं होगा।

(vi) वर्तमान आवेदन समय-सीमा कानून द्वारा भी वर्जित है, क्योंकि सबसे पहले, भले ही किसी धोखाधड़ी का आरोप लगाया गया हो, उसे चुनौती देने की समय-सीमा वर्ष 1984 में ही समाप्त हो गई थी (दिनांक 29.08.1981 के आदेश से 3 वर्ष)। दूसरे, यह तथ्य कि आवेदक को दिनांक 29.08.1981 के आदेश के बारे में वर्ष 2016 में ही पता चला, प्रतिवादी को उक्त पहलू पर आवेदक से जिरह करने का कोई अवसर दिए बिना सत्य नहीं माना जा सकता।

9. उपरोक्त तर्कों के अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता ने आवेदन के समर्थन में हलफनामे से संबंधित कुछ अन्य आधार उठाए कि आवेदन का उचित सत्यापन नहीं किया गया है और इसलिए हलफनामा दोषपूर्ण है।

10. प्रत्युत्तर में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया:

(i) एक बार जब यह रिकॉर्ड पर साबित हो जाता है कि दिनांक 29.07.1976 की डिक्री को रद्द कर दिया गया था, तो विलय का सिद्धांत भी लागू नहीं होगा और अंततः, यह

अंतिम डिक्री है जिसे निष्पादित किया जा सकता था न कि वह डिक्री जिसे रद्द कर दिया गया था।

(ii) खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड (जिसे अब खोडे इंडिया लिमिटेड के नाम से जाना जाता है) और अन्य बनाम श्री महादेश्वर सहकारी सक्कारे कारखाने लिमिटेड, कोल्लेगल, (2019) 4 एससीसी 376 के मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा करते हुए, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि भले ही एसएलपी को गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया हो, फिर भी 'विलय का सिद्धांत' वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा।

(iii) जहां तक धारा 151, सीपीसी के तहत आवेदन की स्थिरता का संबंध है, भारतीय बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, (1996) 5 एससीसी 550 के मामले में पारित फैसले पर भरोसा करते हुए, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामला पूरी तरह से धोखाधड़ी और घोर छिपाव पर आधारित है, इसलिए जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, धारा 151, सीपीसी के तहत अधिकारों का न्यायालय द्वारा अपनी अंतर्निहित शक्तियों में बहुत अच्छी तरह से प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए, न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करके आदेश प्राप्त करने के मामले में हस्तक्षेप करने के लिए समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। वैकल्पिक रूप से, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि भले ही यह मान लिया जाए कि आवेदन कानून के गलत प्रावधान के तहत पेश किया गया है, न्यायालय द्वारा सही प्रावधान का सहारा लिया जा सकता है और आवेदक को केवल गलत नामकरण के कारण अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है।

(iv) जहां तक सीमा अवधि का संबंध है, दिनांक 01.12.2015 के आदेश को वापस लेने के लिए वर्ष 2016 में दायर वर्तमान आवेदन पूरी तरह से सीमा अवधि के भीतर है। इसके विपरीत, रिकॉर्ड पर यह स्पष्ट है कि 30.09.1982 की दूसरी डिक्री के निष्पादन की सीमा पहले ही समाप्त हो चुकी है और इसलिए, डिक्री धारक द्वारा पूर्ण प्रयोग केवल सीमा अवधि को दरकिनार करने के लिए किया गया है।

11. विद्वान वकील श्री एन.आर. चौधरी ने प्रतिवाद में कहा कि जहां तक प्रतिवादी दामोदर दास द्वारा प्रस्तुत नियमित प्रथम अपील को वापस लेने का सवाल है, सबसे पहले, प्रतिवादी/आवेदकों में से किसी को भी उक्त तथ्य की जानकारी नहीं थी और इसके अलावा, यदि डिक्री धारक को उक्त तथ्य की जानकारी थी, तो वह इसे विद्वान ट्रायल कोर्ट के समक्ष रिकॉर्ड पर ला सकता था, जबकि दामोदर दास द्वारा प्रस्तुत आदेश 9 नियम 13, सीपीसी के तहत आवेदन पर विचार किया जा रहा था। इसके अलावा, डिक्री धारक को

उक्त तथ्य की जानकारी होने के बावजूद, आदेश 9 नियम 13, सीपीसी के तहत आवेदन की अनुमति दिए जाने और 29.07.1976 की डिक्री को अलग रखे जाने के बाद, उसने फिर से शुरू होने पर कार्यवाही में भाग लिया। इसका मतलब यह है कि डिक्री धारक ने खुली आंखों से, फिर से शुरू होने के बाद मुकदमे की कार्यवाही में भाग लिया और किसी भी समय इस पर आपत्ति नहीं की। इसलिए, 29.08.1981 के आदेश के शून्य होने का आधार, इस स्तर पर डिक्री धारक के कहने पर उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

12. विद्वान वकील श्री के.एन. व्यास ने भी, खंडन में, प्रस्तुत किया कि वादी समिति के कथित पोतेदार झाबरमल सभी कार्यवाही कर रहे थे और यहाँ तक कि वही वकील सभी कार्यवाहियों में वादी समिति का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इसलिए, यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि वादी समिति को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी कि प्रतिवादी दामोदर दास द्वारा दिनांक 29.07.1976 के निर्णय और डिक्री के खिलाफ प्रस्तुत नियमित अपील को वापस ले लिया गया था। इसलिए, 29.08.1981 के आदेश के शून्य होने का आधार, इस स्तर पर उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

13. प्रतिवादी संख्या 1 डिक्री धारक की ओर से उपस्थित विद्वान वकील डॉ. आरएसडी राजपुरोहित ने अपनी दलीलें समाप्त करते हुए कहा कि वास्तव में डिक्री धारक को 29.08.1981 के आदेश की जानकारी नहीं थी जिसके तहत 29.07.1976 की डिक्री को रद्द कर दिया गया था।

14. विद्वान वकीलों को सुना गया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

15. यद्यपि इस न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वकील द्वारा बहस के दौरान कई आधार उठाए गए हैं, यह न्यायालय आवेदन के उत्तर में की गई दलीलों/आधारों तक ही खुद को सीमित रखेगा। इसके अलावा, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वर्तमान आवेदन दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय को वापस लेने की प्रार्थना के साथ है, यह न्यायालय विषय-वस्तु के गुण-दोष पर विचार करने से खुद को रोकेगा और इसलिए, इस न्यायालय के विचारार्थ निम्नलिखित मुद्दे उठते हैं:

(i) क्या यह न्यायालय, धारा 151, सीपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय को वापस ले सकता है?

(ii) क्या माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसके विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका खारिज किए जाने के बावजूद दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय को इस न्यायालय द्वारा

वापस लिया जा सकता है, अर्थात, क्या 'अंतिमता का सिद्धांत' वर्तमान मामले पर लागू होगा?

16. उपरोक्त मुद्दों पर विचार करने से पहले, इस न्यायालय को पहले यह निष्कर्ष निकालना होगा कि न्यायालय पर धोखाधड़ी की गई है या नहीं? रिकॉर्ड पर यह विवादित नहीं है कि 29.07.1976 की डिक्री को 29.08.1981 को प्रतिवादी दामोदर दास द्वारा आदेश 9 नियम 13, सीपीसी के तहत आवेदन को स्वीकार करते हुए रद्द कर दिया गया था।

रिकॉर्ड पर यह भी विवादित नहीं है कि उक्त डिक्री को रद्द किए जाने के बाद, मुकदमे की कार्यवाही फिर से शुरू हुई और वादी ने पूरी कठोरता के साथ उक्त कार्यवाही में भाग लिया। यहां तक कि मुकदमे की कार्यवाही फिर से शुरू होने के बाद वादी का साक्ष्य भी दर्ज किया गया। इसका अर्थ यह है कि वादी को 29.07.1976 की डिक्री के रद्द होने की अच्छी तरह से जानकारी थी, इसलिए वादी-प्रतिवादी नंबर 1 की ओर से उठाया गया कमजोर तर्क कि उन्हें 29.08.1981 के आदेश की जानकारी नहीं थी, पहली नजर में पूरी तरह गलत बयान साबित होता है।

इसके अलावा, वादी द्वारा प्रस्तुत आवेदन का उत्तर इस पहलू पर पूरी तरह से चुप है। संपूर्ण उत्तर में 29.07.1976 की डिक्री को रद्द किए जाने के तथ्य से इनकार करने या इस तथ्य का दावा करने की एक भी फुसफुसाहट नहीं है कि वादी को इसकी जानकारी नहीं थी। संपूर्ण उत्तर में, केवल वर्तमान आवेदन की स्थिरता और इस तरह के आवेदन पर विचार करने के लिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित आधार उठाए गए हैं और आवेदक द्वारा बताए गए तथ्यों से इनकार करने का एक भी दावा नहीं किया गया है।

17. यह कानून का मूल और स्थापित प्रस्ताव है कि इनकार विशिष्ट होना चाहिए। आदेश VIII नियम 5(1), सीपीसी निम्नानुसार प्रदान करता है:

> “5. विशिष्ट खंडन.--(1) वादपत्र में तथ्य का प्रत्येक अभिकथन, यदि विशिष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा खंडन नहीं किया गया है, या प्रतिवादी की दलील में स्वीकार नहीं किया गया है, तो उसे स्वीकार किया जाएगा, सिवाय विकलांग व्यक्ति के विरुद्ध: बशर्ते कि न्यायालय अपने विवेकानुसार इस प्रकार स्वीकार किए गए किसी तथ्य को ऐसी स्वीकृति के अलावा किसी अन्य तरीके से साबित करने की अपेक्षा कर सकता है: आगे यह भी प्रावधान है कि वादपत्र में तथ्य का प्रत्येक अभिकथन, यदि इस आदेश के नियम 3 ए के तहत प्रदान की गई रीति से खंडन नहीं किया

गया है, तो उसे स्वीकार किया जाएगा, सिवाय विकलांग व्यक्ति के विरुद्ध।"

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बदात एंड कंपनी बॉम्बे बनाम ईस्ट इंडिया ट्रेडिंग कंपनी, एआईआर 1964 एससी 538 के मामले में माना कि यदि किसी तथ्य का खंडन विशिष्ट न होकर टालमटोल वाला हो, तो उक्त तथ्य को स्वीकार किया गया माना जाएगा। उक्त अनुपात को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने थंगम एंड अन्य बनाम नवमणि अम्मल, सिविल अपील संख्या 8935/2011 (04.03.2024 को निर्णीत) के हालिया मामले में फिर से दोहराया है।

18. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, रिकॉर्ड पर यह स्पष्ट है कि वादी प्रतिवादी नंबर 1 ने किसी भी तरह से, यहां तक कि टालमटोल या अस्पष्ट तरीके से भी, 29.07.1976 की डिक्री को रद्द किए जाने के तथ्य से इनकार नहीं किया है। कानून के स्पष्ट प्रावधान के अनुसार, यह निश्चित रूप से स्वीकारोक्ति के बराबर होगा। इस न्यायालय को इस तथ्य के अलावा किसी अन्य निष्कर्ष पर पहुंचने का कोई कारण नहीं मिलता है कि वादी को 29.07.1976 की डिक्री के निरस्त होने की अच्छी तरह जानकारी थी, लेकिन फिर भी उक्त तथ्य को छिपाते हुए, उसने निष्पादन प्रथम अपील संख्या 46/1993 को जारी रखा और इसके खारिज होने के बाद इस न्यायालय के समक्ष निष्पादन द्वितीय अपील संख्या 27/1994 पेश की।

19. यह भी रिकॉर्ड पर स्पष्ट है कि निष्पादन द्वितीय अपील, जो वर्ष 1993/94 में इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी, निस्संदेह 29.08.1981 के आदेश के पारित होने के बाद दायर की गई थी। लेकिन फिर भी उक्त तथ्य का न तो अपील में तर्क किया गया और न ही कभी न्यायालय के समक्ष अभिकथन किया गया। 01.12.2015 का आदेश/निर्णय स्पष्ट रूप से इस बात की अनदेखी में पारित किया गया कि 29.08.1981 का आदेश पारित हो चुका है और विचाराधीन डिक्री, जिसका निष्पादन मांगा गया था, पहले ही निरस्त की जा चुकी है। इसलिए, रिकॉर्ड पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि 01.12.2015 का आदेश/फैसला 29.08.1981 के आदेश की अनदेखी में पारित किया गया था क्योंकि इसे वादी, डिक्री धारक द्वारा दुर्भावनापूर्ण तरीके से छुपाया गया था। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एस.पी.चेंगलवरैया नायडू (मृत) एल.आर. बनाम जगन्नाथ (मृत) एल.आर. और अन्य, एआईआर 1994 एससी 853 में माना है, एक वादी जो न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, मुकदमे के लिए प्रासंगिक सभी दस्तावेज पेश करने के लिए बाध्य है। यदि वह दूसरे पक्ष पर लाभ पाने के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज को रोक लेता है, तो वह न्यायालय के साथ-साथ विपरीत पक्ष पर भी धोखाधड़ी करने का दोषी होगा। उक्त मामले में न्यायालय

ने आगे माना कि जिस व्यक्ति का मामला झूठ पर आधारित है, उसे न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का कोई अधिकार नहीं है और उसे मुकदमे के किसी भी चरण में सरसरी तौर पर बाहर निकाला जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी इस संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

> "मौजूदा मामले के तथ्यों से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि जगन्नाथ ने अदालत के साथ धोखाधड़ी करके प्रारंभिक डिक्री प्राप्त की है। धोखाधड़ी जानबूझकर की गई धोखाधड़ी है जिसका उद्देश्य किसी दूसरे का अनुचित लाभ उठाकर कुछ हासिल करना है। यह किसी दूसरे के नुकसान से लाभ उठाने के लिए की गई धोखाधड़ी है। यह लाभ पाने के इरादे से की गई धोखाधड़ी है।"

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात की कसौटी पर कसते हुए, यह न्यायालय इस बात पर स्पष्ट रूप से सहमत है कि वादी ने इस न्यायालय से दुर्भावनापूर्वक यह तथ्य छिपाया कि दिनांक 29.07.1976 की डिक्री को पहले ही रद्द कर दिया गया था, जो कि अपने पक्ष में निर्णय प्राप्त करने के लिए जानबूझकर किया गया धोखा है। यह स्पष्ट रूप से न्यायालय के साथ धोखाधड़ी है क्योंकि वादी ने दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय के माध्यम से बेईमानी से डिक्री के निष्पादन का आदेश प्राप्त किया है, जो उस तिथि को अस्तित्व में भी नहीं था।

21. एक बार जब यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि वादी ने न्यायालय के साथ धोखाधड़ी की है, तो अब मुद्दा यह होगा कि क्या वादी द्वारा धोखाधड़ी करके प्राप्त आदेश को इस न्यायालय द्वारा धारा 151, सीपीसी के तहत शक्तियों के प्रयोग में वापस लिया जा सकता है? इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, (1996) 5 एससीसी 550 और ए.वी. पपय्या शास्त्री एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य, (2007) 4 एससीसी 221 के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करना उक्त मुद्दे पर निष्कर्ष निकालने के लिए उपयुक्त होगा।
22. इंडियन बैंक के मामले (सुप्रा) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

“21. स्मिथ बनाम ईस्ट, एलो रूरल डिस्ट्रिक्ट काउंसिल में, हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने माना कि धोखाधड़ी का प्रभाव आम तौर पर किसी भी कार्य या आदेश को खराब करना होगा। दूसरे मामले में, लाजरस एस्टेट लिमिटेड बनाम बेस्ली (QB पृष्ठ 702 पर), डेनिंग, एल.जे. ने कहा:

“किसी न्यायालय का कोई निर्णय, किसी मंत्री का कोई आदेश, यदि वह धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया हो, तो उसे कायम नहीं रखा जा सकता। धोखाधड़ी सब कुछ उजागर कर देती है।”

22. भारत में न्यायपालिका के पास भी निहित शक्ति है, विशेष रूप से धारा 151 सी.पी.सी. के तहत, यदि यह न्यायालय द्वारा धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया हो तो अपने निर्णय या आदेश को वापस लेने की। मुकदमे या कार्यवाही में किसी पक्ष पर धोखाधड़ी के मामले में, न्यायालय प्रभावित पक्ष को धोखाधड़ी से प्राप्त डिक्री को अलग करने के लिए एक अलग मुकदमा दायर करने का निर्देश दे सकता है। निहित शक्ति वे शक्तियाँ हैं जो सभी न्यायालयों में, विशेष रूप से उच्च अधिकार क्षेत्र की होती हैं। ये शक्तियां विधान से नहीं बल्कि न्यायाधिकरणों या न्यायालयों की प्रकृति और संविधान से आती हैं ताकि वे अपनी गरिमा बनाए रख सकें, इसकी प्रक्रिया और नियमों का पालन सुनिश्चित कर सकें, अपने अधिकारियों को अपमान और गलत से बचा सकें और अनुचित व्यवहार को दंडित कर सकें। न्यायालय के कामकाज के व्यवस्थित प्रशासन के लिए यह शक्ति आवश्यक है।

23. चूंकि धोखाधड़ी न्यायालय की कार्यवाही की गंभीरता, नियमितता और सुव्यवस्था को प्रभावित करती है और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी करती है, इसलिए न्यायालयों को उस न्यायालय पर धोखाधड़ी करके प्राप्त आदेश को रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति मानी गई है। इसी तरह, जहां न्यायालय को किसी पक्ष द्वारा गुमराह किया जाता है या न्यायालय स्वयं कोई गलती करता है जो किसी पक्ष को पूर्वाग्रहित करती है, न्यायालय के पास अपने आदेश को वापस लेने की अंतर्निहित शक्ति होती है।”

24. वर्तमान मामले में उपरोक्त अनुपात को लागू करते हुए, यह न्यायालय स्पष्ट रूप से इस बात पर सहमत है कि दिनांक 01.12.2015 का आदेश/निर्णय वादी द्वारा दिनांक 29.08.1981 के आदेश को छिपाकर प्राप्त किया गया था। यदि डिक्री को रद्द करने के तथ्य को रिकॉर्ड पर लाया जाता, तो निर्विवाद रूप से दिनांक 01.12.2015 का आदेश/निर्णय न्यायालय द्वारा पारित नहीं किया जाता। एक बार जब यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि दिनांक 01.12.2015 का आदेश/निर्णय धोखाधड़ी और गलत बयानी द्वारा प्राप्त किया गया था, तो उपरोक्त निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, यह न्यायालय मानता है कि धारा 151, सीपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय को वापस लेना निश्चित रूप से उसके अधिकार क्षेत्र में है।

25. अब मुद्दा यह है कि क्या दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय के विरुद्ध एसएलपी को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिए जाने के बाद, अंतिमता/विलय का सिद्धांत लागू होगा और इसलिए, इस न्यायालय के पास दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय को वापस लेने का अधिकार/अधिकार क्षेत्र नहीं होगा?

26. ए.वी. पपय्या शास्त्री के मामले (सुप्रा) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक विशिष्ट मामले से निपटते समय, जिसमें आदेश धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था, निम्नानुसार टिप्पणी की थी:

> "26.....इस प्रकार धोखाधड़ी एक बाहरी संपार्श्विक कृत्य है जो सभी न्यायिक कृत्यों को दूषित करता है, चाहे वह रेम हो या व्यक्तिगत। "मुकदमेबाजी की अंतिमता" के सिद्धांत को इस हद तक नहीं बढ़ाया जा सकता कि इसे बेईमान और धोखेबाज वादियों द्वारा उत्पीड़न के इंजन के रूप में इस्तेमाल किया जा सके।"

27. इस मुद्दे पर आते हुए कि क्या विलय का सिद्धांत वर्तमान मामले पर लागू होगा, यह रिकॉर्ड पर निर्विवाद है कि दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय के खिलाफ़ दायर एसएलपी को समय रहते खारिज कर दिया गया था। बेशक, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई अनुमति नहीं दी गई।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड के मामले (सुप्रा) में विलय के सिद्धांत के पहलू पर विचार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "विलय का सिद्धांत सार्वभौमिक या असीमित अनुप्रयोग का सिद्धांत नहीं है। यह उच्च मंच द्वारा प्रयोग किए जाने वाले अधिकार क्षेत्र की प्रकृति पर निर्भर करेगा और चुनौती की सामग्री या विषय-वस्तु जो रखी गई है या रखी जा सकती है, विलय की प्रयोज्यता का निर्धारण करेगी। उच्च अधिकार क्षेत्र को उसके समक्ष रखे गए आदेश को उलटने, संशोधित करने या पुष्टि करने में सक्षम होना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत, सर्वोच्च न्यायालय अपने अपीलीय अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अपील किए गए निर्णय, डिक्री या आदेश को उलट सकता है, संशोधित कर सकता है या पुष्टि कर सकता है, न कि विशेष अनुमति याचिका का निपटान करते समय विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए। इसलिए विलय का सिद्धांत पूर्व पर लागू किया जा सकता है, न कि बाद पर।"

न्यायालय ने आगे विशेष रूप से टिप्पणी की कि अपील के लिए विशेष अनुमति देने से इंकार करने वाला आदेश, चाहे वह गैर-बोलने वाला आदेश हो या बोलने वाला आदेश, किसी भी मामले में विलय के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करता है। अपील के लिए विशेष अनुमति देने से इंकार करने वाला आदेश चुनौती दिए गए आदेश के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं होता है। यह केवल तभी होता है जब एक बार अपील की अनुमति दे दी गई हो और सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का आह्वान किया गया हो, अपील में पारित आदेश विलय के सिद्धांत को आकर्षित करेगा।

28. उपरोक्त अनुपात को देखते हुए, विलय का सिद्धांत निश्चित रूप से वर्तमान मामले पर लागू नहीं होगा क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई अनुमति नहीं दी गई थी और अपील की अनुमति को अस्वीकार करना समय सीमा में था।

29. प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए आधार पर आते हुए कि 29.08.1981 का आदेश शून्य था क्योंकि 29.07.1976 के निर्णय और डिक्री के खिलाफ नियमित अपील प्रतिवादी दामोदर दास द्वारा पहले ही पेश की जा चुकी थी और उसे खारिज कर दिया गया था। इसलिए, डिक्री ने अंतिमता प्राप्त कर ली और आदेश IX नियम 13, सीपीसी के तहत एक आवेदन पर इसे रद्द नहीं किया जा सकता था। उपर्युक्त आधार इस न्यायालय को ज्यादा मान्य नहीं होगा क्योंकि कानून की स्थिति बहुत स्पष्ट है और इस बिंदु पर तय है। यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि आदेश IX नियम 13, सीपीसी के तहत एक आवेदन दायर करना और साथ ही एकपक्षीय डिक्री के खिलाफ धारा 96(2), सीपीसी के तहत अपील दायर करना प्रतिवादी के लिए उपलब्ध समवर्ती उपचार हैं। यह केवल तभी है जब प्रतिवादी द्वारा एकपक्षीय डिक्री के खिलाफ दी गई अपील वापसी के अलावा खारिज कर दी जाती है, कि आदेश IX नियम 13, सीपीसी के तहत उपाय का पीछा नहीं किया जा सकता है। बेशक, प्रतिवादी द्वारा दी गई नियमित अपील को वापस ले लिया गया था और इसलिए, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आदेश IX नियम 13, सीपीसी के तहत उपाय प्रतिवादी द्वारा नहीं किया जा सकता था। कानून के उक्त प्रस्ताव को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जी.एन.आर.बाबू @ एस.एन.बाबू बनाम डॉ.बी.सी.मुथप्पा एवं अन्य, 2022 आईएनएससी 931 और आगे कौशिक म्युचुअली एडेड कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी बनाम अमीना बेगम एवं अन्य, 2023 आईएनएससी 1065 में दोहराया गया है। कानून की उपरोक्त स्थापित स्थिति के मद्देनजर, प्रतिवादी नंबर 1 के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए आधार को तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता है।

30. सम्पूर्ण विश्लेषण से जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है/सारांशित किया जा सकता है, वह इस प्रकार है:

(i) सबसे पहले, दिनांक 01.12.2015 का आदेश/निर्णय वादी प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करके प्राप्त किया गया था, क्योंकि दिनांक 29.07.1976 की डिक्री, जिसके निष्पादन के लिए प्रार्थना की गई थी, को पहले ही 29.08.1981 को रद्द कर दिया गया था और दिनांक 01.12.2015 तक डिक्री अस्तित्व में नहीं थी/बची हुई थी। यहाँ तक कि दिनांक 29.08.1981 के आदेश के विरुद्ध कोई अपील दायर या लंबित होने की सूचना नहीं है।

(ii) दूसरे, यह न्यायालय, इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद कि दिनांक 01.12.2015 का आदेश/निर्णय धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था, निश्चित रूप से धारा 151, सीपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उक्त आदेश को वापस लेने का अधिकार रखता है। (iii) तीसरा, विलय का सिद्धांत वर्तमान मामले पर लागू नहीं होगा क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय के विरुद्ध अपील की अनुमति नहीं दी गई थी और एसएलपी को समय रहते खारिज कर दिया गया था।

(iv) चौथा, "मुकदमेबाजी की अंतिमता" का सिद्धांत भी लागू नहीं होगा क्योंकि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत नियमित प्रथम अपील वापस ले ली गई थी और गुण-दोष के आधार पर निर्णय नहीं लिया गया था।

31. उपरोक्त निष्कर्षों और प्राप्त विशिष्ट निष्कर्षों के मद्देनजर, तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों में निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, जैसा कि पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में चर्चा की गई है, वर्तमान आवेदन को स्वीकार किया जाता है। दिनांक 01.12.2015 के आदेश/निर्णय को वापस लिया जाता है। एस.बी. सिविल निष्पादन द्वितीय अपील संख्या 27/1994 को बहाल किया जाए और सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाए।

(रेखा बोराना**),** न्यायाधीश

(यह अनुवाद एआई टूल: SUVAS की सहायता से किया गया है)

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।